International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

लोक-संस्कृति बनाम राजनीतिक चेतना: फणीश्वरनाथ 'रेणु' की भावुक आंचलिकता और नागार्जुन की मार्क्सवादी आंचलिकता का द्वंद्व

डॉ. प्रिया मारवाल

अस्सिटेंट प्रोफेसर, स्टेनी मेमोरियल पी.जी कॉलेज, मानसरोवर, जयपुर

शोध सारांश (Abstract)

प्रस्तुत शोध पत्र में हिंदी के दो शीर्षस्थ आंचलिक कथाकारों–फणीश्वरनाथ 'रेणु' और नागार्जुन–के कथा-साहित्य का एक गहन वैचारिक व तुलनात्मक अनुशीलन किया गया है। यद्यपि दोनों रचनाकारों की भौगोलिक पृष्ठभूमि बिहार का मिथिला-पूर्णिया क्षेत्र ही है, किंतु उनके कथा-रस और सरोकारों में स्पष्ट भिन्नता परिलक्षित होती है। रेणु जहाँ अंचल की धूल, कीचड़, चंदना, लोकगीतों, उत्सवधर्मिता और आदिम राग-तत्व को समेटते हुए 'भावुक एवं सांस्कृतिक आंचलिकता' की सृष्टि करते हैं, वहीं नागार्जुन प्रखर मार्क्सवादी चेतना से अनुप्राणित होकर अंचल के भीतर व्याप्त वर्ग-संघर्ष, जमींदारी क्रूरता, बंधुआ मजदूरी और शोषित वर्ग के राजनीतिक सुगबुगाहट को 'प्रगतिशील आंचलिकता' के रूप में उकेरते हैं। यह शोध पत्र दोनों रचनाकारों के यहाँ लोक-संस्कृति के प्रति आकर्षण और राजनीतिक चेतना के दबाव से उत्पन्न द्वंद्व को रेखांकित करता है। अंततः यह सिद्ध करता है कि रेणु जहाँ अंचल की 'आत्मा और संगीत' के चितेरे हैं, वहीं नागार्जुन उसके 'श्रम और विद्रोह' के उद्घोषक हैं।

मुख्य शब्द (Keywords): आंचलिकता, लोक-संस्कृति, राजनीतिक चेतना, मार्क्सवाद, भावुकता, वर्ग-संघर्ष, मैला आँचल, बलचनमा।

२. प्रस्तावना (Introduction)

हिंदी कथा-साहित्य के इतिहास में स्वातन्त्र्योत्तर काल (Post-Independence Era) एक युगांतकारी मोड़ लेकर आता है। स्वाधीनता से पूर्व जहाँ प्रेमचंद ने ग्रामीण जीवन की समस्याओं को देशव्यापी फलक पर चित्रित किया, वहीं स्वाधीनता के बाद देश का मोहभंग और नेहरूवादी समाजवाद की शिथिलता ने साहित्यकारों को केंद्र से हटाकर परिधि की ओर मोड़ा। इसी परिधिगत खोज से 'आंचलिकता' का उदय हुआ। आंचलिकता केवल किसी स्थान विशेष का चित्रण नहीं है, बल्कि वह किसी विशिष्ट भौगोलिक भू-भाग की अपनी वेशभूषा, खान-पान, बोली-बानी, गीत-नृत्य और उसकी अपनी निजी समस्याओं को साहित्य के केंद्र में स्थापित करने का उपक्रम है। हिंदी साहित्य में फणीश्वरनाथ 'रेणु' और नागार्जुन इस विधा के दो समानांतर शिखर हैं। दोनों ही लेखकों का कार्यक्षेत्र बिहार की कोसी और मिथिला की पावन किंतु शोषित धरती रही है। इसके बावजूद, दोनों की दृष्टि में जो बुनियादी अंतर है, वह लोक-संस्कृति के प्रति आत्मीय मोह और राजनीतिक यथार्थ की तीखी समझ का द्वंद्व है। रेणु जहाँ सौंदर्यपरक, लोक-धर्मी और राग-विराग से

युक्त आंचलिकता को महत्व देते हैं, वहीं नागार्जुन अंचल को एक राजनीतिक प्रयोगशाला के रूप में देखते हैं जहाँ वर्ग-चेतना का विकास अपरिहार्य है।

---

३. मुख्य विषय: विश्लेषण और विवेचन

३.१ अंचल की अवधारणा: सांस्कृतिक गंध बनाम आर्थिक यथार्थ

फणीश्वरनाथ 'रेणु' के लिए अंचल एक जीता-जागता, धड़कता हुआ मानवीय अस्तित्व है। उनके सबसे प्रसिद्ध उपन्यास मैला आँचल की भूमिका में वे स्वयं लिखते हैं–"इसमें फूल भी है, शूल भी है, धूल भी है, गुलाब भी है और कीचड़ भी है; मैं किसी से दामन बचाकर निकल नहीं पाया।" रेणु जब अंचल को देखते हैं, तो उनकी आँखें सबसे पहले वहाँ की लोक-संस्कृति, त्योहारों, लोकगीतों और पारमार्थिक भूल-भुलैया को पकड़ती हैं। मेरीगंज गाँव केवल एक स्थान नहीं है, वह एक राग है। वहाँ कमला नदी के पानी की अपनी एक लय है। रेणु की आंचलिकता 'भावुक आंचलिकता' है, क्योंकि वे ग्रामीण जीवन की विद्रूपताओं को दिखाते हुए भी उसके प्रति अगाध प्रेम और आत्मीयता से भरे रहते हैं। वे गाँव की कमियों पर हताश होने के बजाय उसकी सांस्कृतिक जीवंतता में शरण लेते हैं।

इसके सर्वथा विपरीत, नागार्जुन की आंचलिकता का आधार भावुकता न होकर कड़ा आर्थिक और राजनीतिक यथार्थ है। नागार्जुन मूलत: जनता के कवि थे, जिन्हें 'जनकवि' की उपाधि मिली। जब वे उपन्यास विधा में कदम रखते हैं, तो बलचनमा या रतिनाथ की चाची जैसे उपन्यासों में वे अंचल की रूमानियत को सिरे से खारिज कर देते हैं। नागार्जुन के लिए गाँव केवल गीतों और त्योहारों का उत्सव नहीं है, बल्कि वह भूख, नग्नता, बेगारी और कोड़ों की मार सहता हुआ एक श्मशानवत समाज है। वे अंचल की गंध के स्थान पर खेतों में बहने वाले पसीने और ज़मींदार के चाबुक से बहने वाले खून की गंध को सूंघते हैं। नागार्जुन की दृष्टि मार्क्सवादी द्वंद्वात्मक भौतिकवाद से संचालित है, इसलिए वे ग्रामीण परिवेश को वर्ग-विभाजित समाज के रूप में देखते हैं, जहाँ सांस्कृतिक पहलू केवल शोषक वर्ग द्वारा निर्मित एक छलावा मात्र है ताकि शोषित अपनी वास्तविक नियति को भूल सकें।

३.२ लोक-संस्कृति का स्वरूप: उत्सवधर्मिता बनाम दमन का औजार

रेणु के साहित्यों में लोक-संस्कृति एक प्राणवायु की तरह बहती है। मैला आँचल और परती परिकथा में लोकगीतों (जैसे विद्यापति के पद, बारहमासा, सुहाग गीत, और होली) का ऐसा अजस्र प्रवाह है कि पाठक उपन्यास पढ़ते हुए संगीत का अनुभव करता है। गाँव कितना भी त्रस्त हो, मलेरिया और कालाजार से तड़प रहा हो, लेकिन जब बिदापत (विद्यापति) का नाच होता है, तो पूरा गाँव अपनी सुध-बुध खोकर उसमें रम जाता है। रेणु लोक-मानस की आदिम चेतना को टटोलते हैं। उनके यहाँ तंत्रिमा पीर का अंधविश्वास, कमली और डॉ. प्रशांत का प्रेम, बावनदास का भोलापन–सब कुछ लोक-संस्कृति के इसी ताने-बाने से बुना गया है। वे अंधविश्वासों की निंदा तो करते हैं, परंतु ग्रामीणों की इस मासूमियत के प्रति उनके मन में गहरा आदर है। लोक-संस्कृति रेणु के यहाँ ग्रामीण जीवन की जिजीविषा (जीने की इच्छा) का प्रमाण है।

नागार्जुन के यहाँ लोक-संस्कृति का यह उत्सवधर्मी रूप अत्यंत गौण या फीका पड़ जाता है। मार्क्सवादी चिंतन के प्रभाव स्वरूप नागार्जुन यह भली-भांति समझते हैं कि जब तक मनुष्य पेट की भूख से तड़प रहा है, तब तक लोक-संस्कृति का कोई अर्थ नहीं रह जाता। उनके उपन्यास बलचनमा में जब त्योहार आते हैं, तो वे गरीबों के लिए और अधिक शोषण का कारण बनते हैं। बड़े बाबू (ज़मींदार) के घर दुर्गा पूजा का उत्सव तो होता है, लेकिन वह उत्सव बलचनमा जैसे अछूत और गरीब बच्चों के दमन की पृष्ठभूमि पर खड़ा होता है। नागार्जुन दिखाते हैं कि कैसे धर्म, जाति और सांस्कृतिक रूढ़ियाँ ग्रामीण समाज में शोषितों को भाग्यवादी बनाए रखने का औजार हैं। जहाँ रेणु लोक-संस्कृति में गाँव की मुक्ति देखते हैं, वहीं नागार्जुन मानते हैं कि जब तक राजनीतिक चेतना के बल पर शोषक व्यवस्था को उखाड़ नहीं फेंका जाता, तब तक यह लोक-संस्कृति केवल शोषितों की बेड़ियों को सजाने का काम करेगी।

३.३ राजनीतिक चेतना का द्वंद्व: सुधारवादी समाजवाद बनाम क्रांतिकारी मार्क्सवाद

राजनीतिक चेतना के धरातल पर दोनों उपन्यासकारों के बीच का द्वंद्व और भी प्रखर हो जाता है। रेणु का झुकाव समाजवादी आंदोलन की ओर था, और वे महात्मा गांधी के विचारों से भी गहरे प्रभावित थे। मैला आँचल में स्वतंत्रता के ठीक पहले और बाद की राजनीति का जीवंत खाका खींचा गया है। कांग्रेस के नेताओं का भ्रष्टाचार, सोशलिस्ट पार्टी के कालीचरण का जोश और गांधीवादी बावनदास का नैतिक समर्पण–इन सबके माध्यम से रेणु दिखाते हैं कि राजनीति कैसे सीधे-सरल ग्रामीणों को आपस में बांट देती है। रेणु का राजनीतिक नायक बावनदास अंत में भारत-पाकिस्तान की सीमा पर तस्करों को रोकते हुए अपनी जान दे देता है। बावनदास की मृत्यु राजनीतिक व्यवस्था की क्रूरता पर रेणु का एक करुण और भावुक रोदन है। रेणु राजनीति से निराश होते हैं और अंततः डॉ. प्रशांत के मानवीय दृष्टिकोण में अपनी आस्था व्यक्त करते हैं, जो गाँव में रहकर ही लोगों की सेवा करना चाहता है। यानी, रेणु की राजनीति अंत में आकर 'मानवतावाद' और 'हृदय परिवर्तन' में विलीन हो जाती है।

नागार्जुन इस मामले में बिल्कुल अलग हैं; वे हृदय परिवर्तन या गांधीवादी शांतिवाद पर विश्वास नहीं करते। नागार्जुन का मार्क्सवाद अत्यंत आक्रामक और विद्रोही है। बलचनमा का नायक कोई पढ़ा-लिखा डॉक्टर या नैतिक गांधीवादी कार्यकर्ता नहीं है, बल्कि वह एक अनपढ़, शोषित हलवाहा है। बलचनमा बचपन से जमींदारों के अत्याचारों को देखता है, उसके पिता की हत्या ज़मींदार के लठैतों द्वारा सिर्फ एक गाय चुराने के झूठे आरोप में कर दी जाती है। यह व्यक्तिगत पीड़ा आगे चलकर वर्ग-चेतना में बदलती है जब वह किसान सभा के संपर्क में आता है। नागार्जुन दिखाते हैं कि ग्रामीण समाज में शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व संभव नहीं है। यहाँ शोषक और शोषित के बीच एक निरंतर युद्ध चल रहा है। बलचनमा व्यवस्था के खिलाफ हथियार उठाता है, लाठियां चलाता है और कम्युनिस्ट लाल झंडे के नीचे अपनी अंतिम सांस तक लड़ता है। नागार्जुन का राजनीतिक विमर्श सुधारवादी नहीं, बल्कि पूरी तरह से व्यवस्था-परिवर्तनकारी है। वे कांग्रेस के स्वराज को 'धोखा' मानते हैं और किसानों-मजदूरों के अपने राज की वकालत करते हैं।

३.४ नारी पात्रों का चित्रण: संवेदना बनाम सामंती उत्पीड़न

दोनों कथाकारों के यहाँ नारी पात्रों के माध्यम से भी लोक-संस्कृति और राजनीति का यह द्वंद्व मुखरित हुआ है। रेणु के उपन्यासों में स्त्रियाँ (जैसे कमली, फूलिया, लक्ष्मी) अंचल के सौंदर्य, स्नेह और सहजता की प्रतीक हैं। लक्ष्मी महंथ की दासी होने के शोषण को सहती है, लेकिन उसके भीतर एक अद्‌भुत धार्मिक और लोक-संस्कार जनित गरिमा है। कमली का प्रेम अत्यंत कोमल और भावुक है, जो अंचल की प्रकृति के साथ खिलता है। रेणु स्त्रियों के दैहिक और सामाजिक शोषण को दिखाते अवश्य हैं, लेकिन उनका मुख्य ध्यान उनकी आंतरिक पवित्रता और ममतामयी रूप को उभारने पर रहता है।

नागार्जुन के यहाँ नारी पात्र सामंती उत्पीड़न के सबसे बड़े शिकार के रूप में सामने आते हैं। रतिनाथ की चाची में मिथिलांचल के ब्राह्मण समाज के भीतर विधवा स्त्रियों की जो नारकीय स्थिति है, उसका नागार्जुन ने अत्यंत वीभत्स और यथार्थवादी चित्रण किया है। चाची का अवैध गर्भपात और समाज द्वारा उसका बहिष्कार कोई भावुक कहानी नहीं है, बल्कि वह उस सामंती-धार्मिक व्यवस्था पर नागार्जुन का तीखा प्रहार है जो औरतों को केवल एक वस्तु समझती है। नागार्जुन की स्त्रियाँ केवल आँसू नहीं बहातीं; वे समय आने पर समाज के ठेकेदारों को चुनौती भी देती हैं। यहाँ भी नागार्जुन लोक-संस्कृति के उस घिनौने चेहरे को बेनकाब करते हैं जो 'पवित्रता' के नाम पर स्त्रियों का दमन करता है।

३.५ भाषाई शिल्प का अंतर्विरोध

शिल्प और भाषा के स्तर पर भी दोनों लेखकों का यह द्वंद्व स्पष्ट दिखाई देता है। रेणु ने हिंदी कथा-भाषा को एक नया संगीत दिया। उन्होंने मैथिली और स्थानीय बोलियों के ठेठ शब्दों, गालियों, और ध्वन्यात्मक शब्दों (जैसे: खट-खट, झन-झन) का प्रयोग करके भाषा को अत्यंत लचीला और दृश्यात्मक बना दिया। रेणु की भाषा पढ़ते समय अंचल का पूरा वैभव आँखों के सामने तैरने लगता है। उनकी भाषा में एक प्रकार का 'रोमांटिसिज्म' है।

नागार्जुन की भाषा (जो स्वयं मैथिली के प्रकांड विद्वान और 'यात्री' उपनाम से लिखने वाले कवि थे) अत्यंत तीखी, व्यंग्यात्मक और आक्रामक है। वे भाषा को सुंदर बनाने के फेर में नहीं पड़ते। उनकी शैली रिपोर्ताज जैसी सीधी और मारक है। वे सामंती समाज के पाखंड को उघाड़ने के लिए तीखे व्यंग्य बाण छोड़ते हैं। उनकी भाषा में अंचल की मिठास से ज्यादा शोषित वर्ग की कड़वाहट और आक्रोश की अभिव्यक्ति मुख्य है।

---

४. निष्कर्ष (Conclusion)

संक्षेप में कहें तो, फणीश्वरनाथ 'रेणु' और नागार्जुन की आंचलिकता का द्वंद्व वास्तव में हिंदी साहित्य के भीतर 'संस्कृति बनाम क्रांति' का द्वंद्व है। रेणु जहाँ अंचल के 'राग-तत्व' के चितेरे हैं, वहीं नागार्जुन उसके 'श्रम-तत्व' के। रेणु का गाँव हमें अपनी लोक-संस्कृति, त्योहारों और मासूमियत से सम्मोहित करता है और हम उसकी कमियों को भूलकर उससे प्यार करने लगते हैं। रेणु अंचल के घावों पर अपनी भावुक संवेदना का मरहम लगाते हैं।

इसके विपरीत, नागार्जुन का गाँव हमें बेचैन करता है, हमारे भीतर सामाजिक अन्याय के प्रति क्रोध जगाता है। नागार्जुन अंचल के घावों को छिपाते नहीं, बल्कि उस पर चीरा लगाकर अंदर का पीप बाहर निकालते हैं ताकि एक स्वस्थ समाज

का निर्माण हो सके। ये दोनों दृष्टिकोण एक-दूसरे के विरोधी नहीं, बल्कि एक-दूसरे के पूरक हैं। रेणु के बिना हम भारतीय ग्रामीण समाज के आंतरिक सौंदर्य और उसकी आत्मा को नहीं समझ सकते, और नागार्जुन के बिना हम उस समाज के भीतर चल रहे भीषण वर्ग-संघर्ष और राजनैतिक यथार्थ से आँखें नहीं मिला सकते। इन दोनों महान लेखकों का यह वैचारिक द्वंद्व ही आंचलिक उपन्यास विधा को उसकी मुकम्मल पहचान और प्रौढ़ता प्रदान करता है।

---

५. संदर्भ ग्रंथ सूची (Bibliography / References)

1. रेणु, फणीश्वरनाथ, मैला आँचल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. रेणु, फणीश्वरनाथ, परती परिकथा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. नागार्जुन, बलचनमा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. नागार्जुन, रतिनाथ की चाची, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. सिंह, डॉ. नामवर, कहानी: नयी कहानी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. तिवारी, डॉ. रामचंद्र, हिंदी का गद्य-साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
7. शर्मा, डॉ. रामविलास, प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ, किताप महल, इलाहाबाद।
8. कुमार, वीरेंद्र, आंचलिक उपन्यास: सिद्धांत और स्वरूप, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
9. कुमार, वीरेंद्र, *आंचलिक उपन्यास: सिद्धांत और स्वरूप*, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
10. मदान, डॉ. इंद्रनाथ, *प्रेमचंद और उनके बाद का हिंदी उपन्यास*, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
11. राय, गोपाल, *हिंदी उपन्यास का इतिहास*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
12. लाल, डॉ. रामलोचन, *फणीश्वरनाथ रेणु: कला और चिंतन*, बिहार ग्रंथ कुटीर, पटना।
13. मिश्र, डॉ. रामदरश, *हिंदी उपन्यास: एक अंतर्यात्रा*, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
14. सिंह, डॉ. खगेंद्र, *नागार्जुन का कथा-साहित्य और मार्क्सवाद*, प्रगतिशील प्रकाशन, पटना।
15. सिंह, डॉ. बच्चन, *आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।